फूलों

गुच्छा

फूलों का गुच्छा

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा,

त्यागरायनगर, मद्रास

 १९४८ [दाम ६ आने

हिन्दी प्रचार पुस्तकमाला—पुष्प ७२.

अब तक कुल	...		१,७०,०००
पाँचवाँ संस्करण	...	दिसंबर '४८	१०,०००

हिन्दुस्तानी प्रचार प्रेस, मद्रास

दो शब्द

दक्षिण के हिन्दी प्रेमियों को, जिन्होंने हिन्दी कविता में थोड़ी दिलचस्पी ली है, यह संग्रह पसंद आयगा। सरल भाषा और भावशाली कविताएँ ही इसमें दी गयी हैं। कठिन शब्दों और प्रसंगों का अर्थ भी दे दिया गया है; इससे पाठकों को सुविधा होगी। खेद है कि हम मुंशी अजमेरी जी और श्री श्यामनारायण पांडेय की जीवनी के संबंध में कुछ नहीं दे सके हैं। अगले संस्करण में यह कमी पूरी कर दी जायगी।

उन स्वनामधन्य कवियों के हम कृतज्ञ हैं जिनकी रचनाएँ लेकर हम ने यह पुस्तक सजायी है।

—प्रकाशक

सूची

परिचय

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम हिन्दी की स्त्री-कवियों में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी कविता शुद्ध, भाषा और भाव—दोनों दृष्टियों से प्रशंसनीय, मानी जाती है। ये क्षत्राणी हैं। इनका जन्म सन् १९०४ ईस्वी को प्रयाग में हुआ।

सुभद्रा कुमारी के पिता ठाकुर रामनाथ सिंह भजन गाने के बड़े प्रेमी थे। उनके भजन सुन-सुनकर बालिका सुभद्रा के हृदय में भी तरंगें उठा करती थीं और वह भी गुनगुनाने लगती थीं। वहीं से कविता का बीजारोपण हुआ।

सुभद्रा कुमारी ने प्रयाग के 'क्रास्थवेस्ट' गर्ल्स स्कूल में शिक्षा पायी थी। सन् १९१९ ईस्वी में इनका विवाह खंडवा-निवासी ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान, बी. ए., एल. एल. बी. के साथ हुआ। सुभद्रा कुमारी पति के साथ जबलपुर गयीं और मध्य प्रदेश के राजनीतिक आंदोलन में भाग लेने लगीं। ये जबलपुर और नागपुर में दो बार राष्ट्रीय 'झंडा-सत्याग्रह' में जेल गयीं। ये निरंतर साहित्य-चर्चा में लगी रहती थीं। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविताएँ और कहानियाँ बराबर प्रकाशित होती रहती थीं। और हिन्दी-संसार में इनकी रचनाएँ बड़ी रुचि के साथ पढ़ी जाती थीं। आपके 'बिखरे-मोती' और 'उन्मादिनी' नामक दो कहानी संग्रह और 'मुकुल' सीधे-साधे चित्र, 'त्रिधारा' 'सभा के खेल' आदि अन्य पुस्तकें प्रकाशित हैं। उनकी सुंदर रचनाओं पर पाँच सौ रुपये का सेक्सरिया पुरस्कार दो बार मिल चुका है।

हाल ही में सन् १९४८ फ़रवरी में इनका आकस्मिक देहान्त हो गया। हिन्दी साहित्य-संसार का इनकी मृत्यु से अपार नुकसान हुआ है।

श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

जन्म सन् १८६५. मृत्यु सन् १९४७ उपाध्याय जी के पिता का नाम पं. भोलासिंह उपाध्याय था। इनके पूर्वज बदाऊँ के रहनेवाले थे। किंतु लगभग तीन सौ वर्षों से वे आज़मगढ़ के पास, तमसा नदी के किनारे क़सबा निज़ामाबाद में आ बसे थे। इस परिवार की जीविका ज़मींदारी और वंश परंपरागत पांडित्य है।

वर्नाक्यूलर मिडिल परीक्षा पास कर लेने के बाद उपाध्यायजी ने कुछ अंग्रेज़ी भी पढ़ी और लगभग चार वर्ष तक उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत का भी अभ्यास किया। सन् १८८४ ई० में ये निज़ामाबाद के तहसीली स्कूल में अध्यापक नियत हुए। निज़ामाबाद में सिख-संप्रदाय के एक साधु बाबा सुमेर सिंह रहते थे। वे हिन्दी भाषा के अच्छे कवि थे। उनकी ही संगति से उपाध्याय जी में हिन्दी की ओर विशेष अभिरुचि हुई।

वर्तमान हिन्दी कवियों में उपाध्यायजी का खास स्थान है। हिन्दी साहित्य में इनकी पहुँच प्रामाणिकता के स्थान तक समझी जाती है। हिन्दी में इनका लिखा हुआ अतुकांत महाकाव्य "प्रिय-प्रवास", इनकी प्रतिभा का उज्ज्वल प्रमाण है। ये कठिन से कठिन और सरल से सरल—दोनों प्रकार की हिन्दी में गद्य-पद्य की रचना करते हैं। आप बहुत सालों तक हिन्दू विश्व-विद्यालय में हिन्दी के प्रोफ़ेसर रह चुके हैं। 'प्रिय-प्रवास' के बाद इन्होंने रोज़मर्रे की बोल-चाल में दो पद्य पुस्तकें और लिखीं—"चोखे चौपदे" और "चुभते चौपदे"। इन चौपदों में हिन्दी मुहावरों का बड़ा ही सुंदर प्रयोग किया गया है। पहले ये व्रजभाषा में कविता लिखा करते थे, अब खड़ी बोली में, लिखते हैं। व्रजभाषा की कविता में ये अपना उपनाम "हरिऔध" रखते थे जो अब इनके असली नाम की तरह प्रचलित हो गया है। इनका एक नूतन काव्य ग्रंथ—"वैदेही वनवास"—भी प्रकाशित हो गया है।

उपाध्यायजी समय-समय पर कितनी ही साहित्यिक सभाओं के और हिन्दी साहित्य के सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं।

श्री सोहनलाल द्विवेदी, एम. ए., एल. एल. बी.

श्री द्विवेदीजी का जन्म बिंदकी ज़िला फ़तहपुर, यू. पी. में सन् १९०५ ई० में हुआ था। आप विद्यार्थी-जीवन से ही कुछ न कुछ बालकोपयोगी रचनाएँ लिखते चले आ रहे हैं। बच्चों के लिए सुंदर कहानियाँ और सरस कविताएँ लिखने में आप बड़े सिद्धहस्त हैं। आप बड़े ही भावुक और एक प्रगतिशील कवि हैं।

आपकी बहुत सी स्फुट-रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। आप की "भैरवी", "युगारंभ" आदि कविता-पुस्तकें और "दूध बताशा" "पाँच कहानियाँ"; "बाँसुरी", "दूर्वा" आदि बालकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

आप प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि माने जाते हैं।

श्री मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सन् १८८६ ई० में चिरगाँव, झाँसी में हुआ था। गुप्तजी पाँच भाई हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—महारामदास, रामकिशोर, मैथिलीशरण, सियारामशरण और चारुशीला शरण।

वर्तमान हिन्दी-कवियों में बाबू मैथिलीशरण जी का नाम हिन्दी संसार में सब से अधिक प्रसिद्ध है। उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों और नवयुवकों में इनकी कविता ने हिन्दी के लिए बड़ा अनुराग उत्पन्न कर दिया है। ये संस्कृत भी जानते हैं और बंगला भाषा में काफ़ी दख़ल रखते हैं। गुप्तजी बड़े ही सरस हृदय, मिलनसार और शुद्ध प्रकृति के व्यक्ति हैं। इनकी लिखी पुस्तकों में "भारत-भारती" सब से प्रसिद्ध है। इसका प्रचार भी काफ़ी है। इनकी लिखी हुई और अनुवादित कुछ किताबें ये हैं:—

साकेत, भारत-भारती, जयद्रथ वध, हिन्दू, पंचवटी, बक-संहार, वन-वैभव, सैरंध्री, त्रिपथगा, झंकार, रंग में भंग, किसान, शकुंतला, यशोधरा, द्वापर, विरहिनी व्रजांगना, मेघनादवध, रुबाइयात उमरख़य्याम, चंद्रहास, तिलोत्तमा आदि।

"साकेत" पर इनको "मंगला प्रसाद पारितोषिक" मिला था। इनकी पचासवीं वर्ष-गाँठ पर काशी में इनकी जयंती मनायी गयी थी और इन्हें मैथिली-मान-ग्रंथ भेंट किया गया था।

श्री सियारामशरण गुप्त

बाबू सियारामशरण गुप्त, बाबू मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। इनका जन्म सन् १८९५ ई० में हुआ था। इनकी कविता की भाषा बहुत शुद्ध और परिमार्जित होती है। भावों को व्यक्त करने की इनकी अपनी अलग शैली है। ये गद्य भी अच्छा लिखते हैं। इनके उपन्यास और कहानियाँ भी ऊँचे दर्जे की होती हैं। इनकी प्रकाशित पुस्तकों में से कुछ ये हैं:—

उपन्यास—गोद, नारी। कहानियाँ—अन्तिम आकांक्षा, मानुषी। नाटक—पुण्य पर्व। कविता—मौर्य विजय, दूर्वादल, मृण्मयी, अनाथ, आर्द्रा, पाथेय, बापू आदि।

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

ठाकुर गोपालशरण सिंह रीवाँ राज्य में नयीगढ़ी इलाक़े के इलाक़ेदार हैं। आपका जन्म सन् १८९१ ईस्वी में हुआ था। ठाकुर साहब को बचपन से ही कविता से प्रेम है। पहले ये व्रजभाषा में कविता लिखा करते थे। पीछे उन्होंने इस बात को साबित कर दिया कि बोलचाल की भाषा में भी वैसी ही मधुर रचना हो सकती है जैसी व्रजभाषा में हो चुकी है।

ठाकुर साहब संवत् १९८२ (सन् १९२५ ईस्वी) में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ होनेवाले अखिल भारत वर्षीय कवि-सम्मेलन, वृंदावन के सभापति निर्वाचित हुए थे। और सन् १९३५ ई० में मैसूर में होनेवाली ओरियंटल कान्फ्रेन्स के अवसर पर ठाकुर साहब अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के सभापति हुए थे। यह सम्मान समस्त हिन्दी कवियों क लिए भी गौरव का समझा जायगा। आप हिन्दुस्तानी अकेडमी की कार्यकारिणी समिति के प्रमुख सदस्यों में हैं।

ठाकुर साहब बड़े सरस हृदय, प्रसन्नचित्त, मिलनसार और सुशील हैं। आपकी कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जैसे माधवी, कादंबिनी, मानवी, ज्योतिष्मती, संचिता इत्यादि।

इन संग्रह ग्रंथों में इनकी बहुमुखी प्रतिभा दिखाई पड़ती है। आप अपने भावों को बड़ी ही सरलता से परिमार्जित भाषा में व्यक्त कर सकते हैं। यही इनकी ख़ास विशेषता है।

श्री राधेश्याम कथावाचक

आप बरेली के रहनेवाले हैं। हिन्दी संसार ने आपको एक नाटककार और कथावाचक के रूप में पाया है। सिनेमा का प्रचार होने के पूर्व कलकत्ते की न्यू एल्फ्रेड थियेटरिकल कंपनी में आपके लिखे हुए नाटकों ने देश में काफ़ी धूम मचा दी थी। आपने कई एक नाटक लिखे हैं जिनमें ईश्वरभक्ति, वीर अभिमन्यु, श्रवणकुमार आदि प्रसिद्ध हैं। नाटकों के अतिरिक्त आपने कथावाचक के रूप में काफ़ी ख्याति पायी है। आपने संपूर्ण रामायण कथा के रूप में, राग-रागिनियों के साथ गाये जाने के योग्य बड़ी ही सुंदर, सरस और सरल भाषा में लिखी है। यहाँ पर उसी रामायण से कुछ पंक्तियाँ दी गयी हैं।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

ठुकरा दो या प्यार करो

देव! तुम्हारे कई उपासक,
कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे,
कई रंग के लाते हैं॥

धूमधाम से, साजबाज से,
वे मंदिर में आते हैं।
मुक्तामणि बहुमूल्य वस्तुयें,
लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं॥

मैं ही हूँ ग़रीबिनी ऐसी,
जो, कुछ साथ नहीं लायी।
फिर भी साहस कर मंदिर में,
पूजा करने को आयी ॥

धूप-दीप-नैवेद्य नहीं है
झाँकी का शृंगार नहीं।
हाय, गले में पहिनाने को,
फूलों का भी हार नहीं।

अस्तुति कैसे करूँ कि स्वर में,
मेरे है माधुरी नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को,
मुझमें है चातुरी नहीं ॥

नहीं दान है, नहीं दक्षिणा,
खाली हाथ चली आयी।
पूजा की भी विधि न जानती,
फिर भी नाथ चली आयी।

पूजा और पुजापा प्रभुवर,
इसी पुजारिन को समझो।
दान-दक्षिणा और निछावर,
इसी भिखारिन को समझो ॥

मैं उन्मत्त प्रेम का लोभी,
हृदय दिखाने आयी हूँ।
जो कुछ है बस यही पास है,
इसे चढ़ाने आयी हूँ॥

चरणों पर अर्पण है इसको।
चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है,
ठुकरा दो या प्यार करो॥

उपासक - पूजा करनेवाला
ढंग - तरीक़ा
भेंट - उपहार
धूमधाम - ठाठ-बाट, भारी तैयारी
साज-बाज-सजावट
मुक्तामणि - मोती-हीरे-जवाहिरात
धूप-दीप-नैवेद्य - पूजा की सामग्री
झाँकी - झांकना, दर्शन, (भगवान के दर्शन के लिए जो (अलंकार) सजावट की जाती है उसे झाँकी कहते हैं)
हार - माला
अस्तुति - (स्तुति) गुणकीर्तन, प्रशंसा
माधुरी - मिठास, शोभा, सुंदरता
चातुरी - चतुराई
विधि - तरीक़ा, ढंग
पुजापा - पूजा की सामग्री
निछावर - वारना (त्याग, अर्पण)
उन्मत्त - पागल
अर्पण - भेंट
ठुकराना - ठोकर मारना, लात मारना, तुच्छ समझकर दूर हटाना

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

गुलाब का फूल

देख फूला एक फूल गुलाब का ;
तोड़ उसको एक लड़के ने लिया।
इस सितम को देख बोला फूल यों ;
यह अरे बे-पीर! तूने क्या किया?

क्या समझ सकता नहीं यह बात तू ;
धूल में मेरी मिलीं चाहें सभी।
आज तू ने छीन जो मुझ से लिया ;
पा सकूँगा मैं न अब उसको कहीं॥

हँस न पाया था कि रोने की पड़ी;
कुछ न देखा और आँखें बंद कीं।
आह! तेरे ही किये सब पंखड़ी;
खिल न पायी थीं कि कुम्हलाने लगीं॥

है समझता, जीव मुझमें है नहीं;
और दुख-सुख भी नहीं होता मुझे।
भूल है यह, पंडितों से पूछ ले;
भेद इसका वे बता देंगे तुझे॥

क्या हरी निज पत्तियों में मैं तुझे;
छवि दिखाता था न, या भाता न था?
क्या वहीं से ही महँक मेरी भली;
तू सहारे पवन का पाता न था?

किसलिए फिर यों सताया मैं गया;
जी न बहलाना तुझे यों चाहिये।
इस तरह क्या चाहिये करना बदी;
कोट-कुर्ते की सजावट के लिये॥

ठूंठ हो डंटी खड़ी है रो रही;
मैं कलपता हूँ कलेजा थाम कर।
कुछ घड़ी में पंखड़ी नुच जायगी;
धूल पर मैं लोटता हूँगा बिखर॥

अब मिलेंगे वे न प्यारी पत्तियाँ ;
जो गले लग प्यार दिखलाती रहीं।
वे अनूठी डालियाँ फूलों भरी ;
गोद में अब ले खेलायँगी नहीं ॥

वे हमारे संगवाले फूल सब ;
पास बैठे जो कि गाते थे खिले।
अब हमें देंगे दिखाई भी नहीं ;
हम रहे जिनसे बहुत दिन तक हिले ॥

चूम जायेंगी न आ आ तितलियाँ,
गीत भौंरे भी सुनायेंगे न गा।
कौन देखेगा हमारी ओर अब ;
चौगुनी चाहें भरी आँखें लगा ॥

वह बड़ा सुन्दर सबेरे का समाँ,
जब कि मैं जी खोल करके था खिला।
अब नहीं मैं देख पाऊँगा कभी ;
आह, मैं किससे करूँ इसका गिला ॥

कौन है दुख दूसरों का जानता?
निज सुखों में सब सदा भूला रहा।
मर मिटे कोई बला से मर मिटे ;
कब न मानव रुचि-तरंगों में बहा ॥

जनम तेरा उसी कुल में हुआ ;
　　है बड़प्पन का जिसे दावा बड़ा ।
पर हुआ क्या, आज तेरे हाथ से ;
　　एक को यों ही सभी खोना पड़ा ॥

बीतती जो आज तुझ पर इस तरह ;
　　तो समझ सकता पराई पीर तू ।
जो लगा हो तुझे, तो और को ;
　　मार सकता था नहीं यों तीर तू ॥

जो कि होना था हुआ, मैं इसलिये ;
　　अब नहीं कुछ और कहना चाहता ।
पर तुझे यह बात बतलाये बिना ;
　　है नहीं मन भी हमारा मानता ॥

जी बिना मैं हूँ नहीं, जड़ मैं न हूँ ;
　　दुख दरद से भी बचा हूँ मैं नहीं ।
तोड़ लेना इसलिये यों ही मुझे ;
　　है बहुत से पाप से बढ़कर कहीं ।

दूर करने के लिए दुख और का ;
　　लोकहित में लगाने के लिए ।
फूल-पत्ते तुम भले ही तोड़ लो ;
　　देवताओं पर चढ़ाने के लिए ॥

पर कभी यों ही उन्हें मत तोड़ना ;
है बुरा यह और निठुराई निरी।
किसलिए हो और पर ढाते विपत ;
हो न सहते आँख की जब किरकिरी ॥

क्यों मुझी पर इस तरह जी आ गया ;
फूल फूले हैं यहाँ पर तो सभी ॥
क्या कहें, किससे कहें, कैसे कहें ;
रूप-गुन भी पीस देता है कभी।

सितम - ग़ज़ब, अनर्थ, अत्याचार
बेपीर - निर्दय, क्रूर
पंखड़ी - फूल का दल
कुम्हलाना - मुरझाना
भाता - अच्छा लगता
महँक - खुशबू
बहलाना - चित्त प्रसन्न करना
बदी - बुराई
ठूंठ - बिना फूल-पत्ते का पेड़
कलपना - बिलखना, रोना
कलेजा थामकर - मन-मसोसकर, बहुत दुखी होकर
बिखरना - तितर बितर हो जाना

अनूठी - अनुपम
हिले - मिले, हिले-मिले
समाँ - दृश्य
गिला - उलहना, निंदा, शिकायत
दावा - अधिकार, गर्व, माँग
पीर - दर्द
निठुराई - क्रूरता
निरी - बिलकुल, निपट
विपत ढाना - दुख डालना
आँख की किरकिरी - धूल का कण जो आँख में पड़कर पीड़ा देता है।
जी आना - लुभा जाना, आकर्षित होना

श्री सोहनलाल द्विवेदी

युगावतार बापू

(१)

चल पड़े जिधर को डग, मग में,
　　बढ़ चले कोटि पग उसी ओर।
पड़ गयी जिधर भी एक दृष्टि,
　　गड़ गये कोटि दृग उसी ओर॥

जिसके सिर पर निज धरा हाथ,
　　उसके सिर रक्षक कोटि हाथ;
जिस पर निज मस्तक झुका दिया,
　　झुक गये उसी पर कोटि माथ।

हे कोटि चरण, हे कोटि बाहु,
हे कोटि रूप, हे कोटि नाम!
तुम एक मूर्ति, प्रति-मूर्ति कोटि,
हे कोटि मूर्ति, तुम को प्रणाम ॥

(२)

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख,
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तुम अचल मेखला बन भू की,
खींचते काल पर अमिट रेख ।
तुम मौन रहे, युग मौन रहा,
तुम बोल उठे, युग बोल उठा ।
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर,
युग-कर्म जगा ; युग धर्म तना ॥
युग - परिवर्तक, युग - संस्थापक,
युग - संचालक हे युगाधार ।
युग-निर्माता, युग-मूर्ति तुम्हें,
युग युग तक का युग नमस्कार ॥

भावार्थः—

महात्मा गांधी जिधर जाते हैं, उधर ही सारा संसार और ज़माना चलता है। अर्थात् उनका अनुयायी बनता है। जिस ओर वह देखते हैं,

जो बात वह कहते हैं—उधर देखनेवाले, उस बात को दुहरानेवाले करोड़ों लोग होते हैं। जिसकी वह रक्षा करते हैं उसके करोड़ों रक्षक हो जाते हैं।

वह एक सिर, एक हृदय और एक नामवाले होकर भी करोड़ों सिर, करोड़ों हृदय और करोड़ों नामवाले हैं, क्योंकि उनकी आज्ञा पर करोड़ों लोग चलते हैं।

डग - पैर

मग - रास्ता

पग - पैर

दृग - आँख

सिर पर हाथ धरना - रक्षा करना, शरण में लेना

भृकुटि - भौंह, (क्रोध)

अचल - स्थिर, दृढ़

मेखला - कमरबंद, Belt

काल - समय

रेख - रेखा

संचित - एकत्रित, इकट्ठा

युगधर्म - समय के अनुसार चाल व व्यवहार

तना - कठोर बना, मज़बूत बना

(युग) परिवर्तक - बदलनेवाला

संस्थापक - शुरू करनेवाला

संचालक - चलाने या गति देनेवाला

निर्माता - बनानेवाला, निर्माण करनेवाला
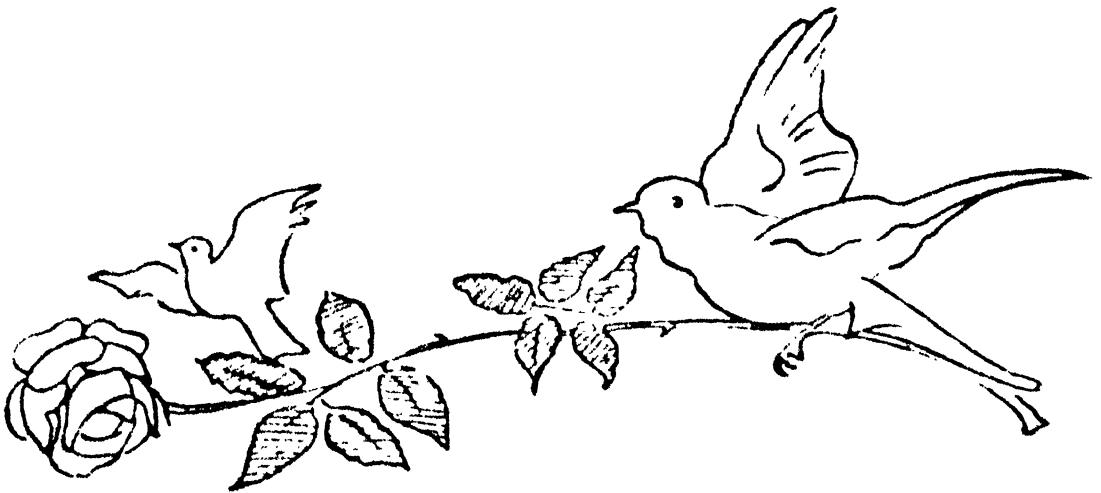
बालिका शकुन्तला

पुण्य तपोवन की रज में वह खेल खेलकर खड़ी हुई;
आश्रम की नवलतिकाओं के साथ साथ कुछ बड़ी हुई।
पर समता कर सकीं न उसकी राजोद्यान मल्लियाँ भी;
लज्जित हुईं देख कर उसको नंदन-विपिन-वल्लियाँ भी।

उसके रूप-रंग-सौरभ से महँक उठा वह वन सारा;
जीवन की धारा थी मानों मंजु मालिनी की धारा।
रखती थी प्रेमार्द्र सभी को वह अपने व्यवहारों से;
पशु-पक्षी भी सुख पाते थे उसके शुद्धाचारों से।

कभी घड़ों में भर भर कर वह पौधों को ज़ल देती थी;
कभी खगों के, कभी मृगों के बच्चों की सुध लेती थी।
तोते कभी पढ़ाती थी वह, कभी मयूर नचाती थी ;
सहचरियों के साथ छाँह में क्रीड़ा कभी मचाती थी ।

सीमा-रहित अनंत-गगन-सा विस्तृत उसका प्रेम हुआ ;
औरों का कल्याण-कार्य्य ही उसका अपना क्षेम हुआ।
हिंसक पशु भी उसे देखकर पैरों में पड़ जाते थे ;
मुँह में हाथ दाब कर धीरे मीठी थपकी पाते थे।

बुद्धि कुशाग्र-भाग-सी उसकी शिक्षा पाने में पैठी ;
पाठ याद कर लेती थी वह अनायास बैठी बैठी ।
देव-देवियों के चरित्र जब प्रेम सहित वह गाती थी ;
तब मालिनी नदी भी मानों क्षण भर को थम जाती थी।

हंस और मीनों से उसने जल में तरना सीखा था ;
शीतल और सुगंध पवन से मंद विचरना सीखा था ।
होम-शिखा से सद्भावों को जग में भरना सीखा था ;
आश्रम के उन्नत विटपों से परहित करना सीखा था ।

मुक्त नभोमंडल-सा अविचल निर्मल जीवन था उसका ;
ऊषा के प्रकाश-सा पावन निरालस्य तन था उसका।
उज्ज्वल, उच्च, हिमालय जैसा अति उन्नत मन था उसका;
प्रकट-अधिष्ठात्री-सी थी वह, धन्य तपोवन था उसका।

गुरुजन की सेवा-शुश्रूषा भक्ति सहित वह करती थी ;
शीतल-जल-युत कंद-मूल-फल उनके सम्मुख धरती थी ।
आते थे जो अतिथि वहाँ पर अतिशय आदर पाते थे ;
मुक्त कंठ से उसके सद्‌गुण गाते गाते जाते थे ।

नया नया उत्साह कार्य में उसे सर्वदा रहता था ;
दया और ममता का मिलकर स्रोत निरंतर बहता था ।
उसकी भोली-भाली सूरत एक बार जिसने देखी
मानों सुर-गुरु-कन्या ही की अनुपम छवि उसने लेखी ।

(शकुन्तला से)

रज - धूल
लतिका - बेल, वल्ली
समता - समानता, बराबरी
उद्यान - बग़ीचा
मल्ली - बेला, एक फूल
नंदन - विपिन - वल्ली—स्वर्ग की वाटिका की लता
सौरभ - सुगन्ध, महक
मंजु - सुंदर, मनोहर
मालिनी - एक नदी का नाम, जहाँ कण्व का आश्रम था। आजकल वह स्थान बिजनौर ज़िला में है।
प्रेमार्द्र - प्रेम में डूबा हुआ
खग - पक्षी
मृग - हरिण
सुध लेना - ख़बर लेना, देख-भाल रखना
सहचरी - सखी, साथिन
क्रीड़ा - खेल
मचाना - करना
क्षेम - सुख, आनंद
थपकी देना - हाथों से प्यार करते हुए थपथपाना, ठोंकना, (Patting)

कुशाग्रभाग - कुश (दर्भा) का अगला भाग

अनायास - बिना परिश्रम के

थम जाना - रुक जाना

तरना - तैरना

होम शिखा—यज्ञ की प्रज्वलित लौ, ज्वाला

विटप - पेड़

परहित - परोपकार

पावन - पवित्र

अधिष्ठात्री - प्रधान (वह जिसके हाथ में किसी कार्य का भार हो।)

युत - के साथ

धरती - रखती

निरंतर - लगातार, सर्वदा

सुर-गुरु-कन्या — देवताओं के गुरु बृहस्पति की लड़की

लेखी - देखी
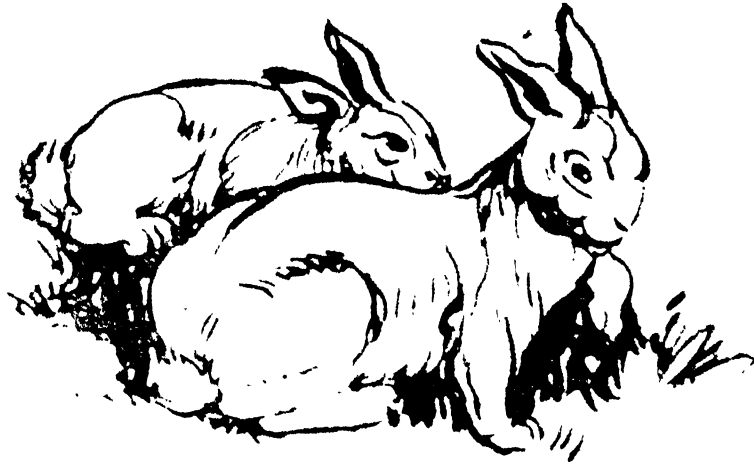
डाक्टर साहब

(१)

बैठे बैठे ऊब उठे थे डाक्टर साहब
बड़ी देर से, उलट-पलट विज्ञापन भी सब
देख चुके जब, वहीं मेज़ पर मुँह बिगाड़ कर
पटक दिया अखबार, हाथ से धूल झाड़कर।
ली फिर एक किताब, खोल कर इधर उधर से
लौट-पलट कर, उसे बंदकर, कुर्सी पर से,
तिरछे होकर, देह उठाकर झाँके बाहर ;
फिर ज्यों के त्यों बैठ गये मस्तक कुंचित कर।

नाकर जाता हुआ सामने देख अचानक
बोले उससे, "कहाँ मर गया था तू अब तक ?
कमरा झाड़ा नहीं, अरे क्यों ?" ठहर ठिठककर
बोला वह आश्चर्य चकित, "मैं ने तो वह घर
बड़ी देर का साफ़ कर दिया।" डाक्टर साहब
फिर भी झुँझला पड़े, "अरे, तो क्या कुछ अब
काम नहीं ; क्यों यहीं खड़ा है ?" सिर नीचा कर
धीरे से वह खिसक गया चुपचाप, निरुत्तर।

वहीं आठ दस कोस पर किसी नगर में,
डाक्टर के सन्निकट कुटुम्बी जन के घर में,
था कुछ उत्सव। वहीं गयी थी पत्नी प्यारी,
निज घर की भी तरल कलोत्सव-धारा सारी
लेकर अपने साथ। यहाँ सूने में प्रति पल
डाक्टर का मन विमन हो रहा था अति विह्वल।

(२)

कर के हरहर नाद बेतवा की स्वर-धारा
बड़े वेग से बही जा रही थी ; तट सारा
वही एक ही गान सुन रहा था निर्जन में
तन्मय होकर ; सांध्य समीरण के सन-सन में
गूँज रही थी गूँज उसी की चारु चपल तर

लहरावलियाँ खेल रही थीं उछल-उछल कर,
थिरक-थिरक कर, थाप लगाकर असम ताल पर।
डाक्टर साहब एक स्वच्छ पत्थर पर बैठे,
नदी किनारे भाव-नदी में से थे पैठे,
रेखाएँ कुछ खींच रहे थे बालू पर वे।
सम्मुख एक 'गँवार' देख कर नाक सिकोड़ी;
अरे, यहाँ भी शांति नहीं मिल सकती थोड़ी।

बोले—'कह क्या काम, यहाँ तू कैसे आया?'
आगंतुक ने समाचार कह उन्हें सुनाया।
आध कोस ही दूर खेत पर नदी किनारे,
करता था वह काम; विकल तृष्णा के मारे
पानी पीने गया; हाथ-मुँह जल में धोकर
अंजलि उसने भरी, हुई त्योंही दृग-गोचर
बीच धार में देह किसी की बहती जाती,
कभी डूबती और कभी ऊपर है आती।
पहले तो जब उसे अलक ही दिये दिखाई,
भ्रम सिवार का हुआ, दृष्टि फिर से दौड़ाई
तब निश्चय कर सका—अरे यह कोई नारी
पड़ प्रवाह में बही जा रही है बेचारी।

किस घर की सुख शांति लूट, कर दिया अंधेरा,
हत्यारी, अब कौन पिये यह पानी तेरा,
बिना हिचक वह कूद पड़ा वैसा ही धम से;
ऊपर छींटे उड़े। शक्ति सब अंतरतम से
संग्रह कर वह चला, काटकर वह खर धारा।
लौटा जब उस देह-सहित तब श्रम का मारा
बालू पर गिर पड़ा हाँफ कर। इधर उधर से
लोग वहाँ आ जुटे दौड़ कर खेतों पर से।
नारी थी निस्पंद, नहीं चलती थी नाड़ी।
चुआ रही थी नीर देह पर चिपकी साड़ी;
वह भी हिलती न थी समीरण के स्पंदन से।
छिटक रही थी किंतु ज्योति-सी उसके तन से।

वैसा ही तब उसे छोड़ वह दौड़ा आया,
बड़ी देर में पता यहाँ डाक्टर का पाया।
पर डाक्टर सुन सके न उससे पूरा विवरण,
थोड़े में सब समझ, टोककर बोले तत्क्षण—
"जीती तेरे लिए अभी तक होगी क्या वह?
जा थाने में, वहीं सुनाना सब ब्यौरा यह।"

आने का उत्साह-वेग निज खोकर सारा,
लौटा वह चुपचाप जुए में हो ज्यों हारा

पर तुरंत ही नये दाँव रखने के बल पर
पीछे वह फिर मुड़ा, चार-छे ही पद चलकर ।
बोला, "मुझको नहीं मरी-सी लगती है वह,
सोने को हो, किंतु अभी कुछ कर जगती है वह ।
हूँ गरीब मैं, किंतु भेंट कुछ कर ही दूँगा,
चलें आप, उपकार जन्म भर मैं मानूँगा ।"
"तू देगा कुछ हमें ?" बिगड़ कर डाक्टर बोले—
"दे सकने के योग्य अरे पहले तो हो ले ।"
एक दाँव पर लगा शेष-धन अपना सारा,
धीरे-से हो गया ओट में वह बेचारा ।

(३)

टेबुल पर था लैम्प, रोशनी उसकी तीखी
आँखों को हो रही ज्ञात थी शत्रु-सरीखी ।
डाक्टर ने निज ओर एक अखबार लगाया,
अपनी ओर स्वयं डालकर तम की छाया ।

इसी समय वह तिमिर अचानक दुगुना करके,
नौकर आया वहाँ, कक्ष क्रंदन से भरके ।
डाक्टर घबरा उठे, "हुआ रे क्या, कुछ कह तो ?"
"सर्वनाश हो गया, कहूँ क्या ?" कह कर वह तो
और अधिक रो उठा । किंतु पूछा फिर फिर जब

बता सका वह हाल, पीट कर अपना सिर तब
"डूब मालिकिन गयीं, नाव से सहसा गिरकर।
वज्रपात-सा हुआ अचानक ही डाक्टर पर।
निर्दयता से पीट उठे विक्षिप्त हृदय वे,
दौड़ पड़े फिर नदी-ओर को उसी समय वे।
कहीं अभी मिल जाय वहीं उसका जीवित शव!
दब पैरों से पतित-पत्र कर उठे करुण-रव!

(आर्द्रा से)

विज्ञापन - इश्तहार, Advertisement
मस्तक - माथा
कुंचित - टेढ़ा
ठिठक जाना - सहम जाना, रुक जाना
झुंझलाना - गुस्सा करना
खिसक जाना - हट जाना
निरुत्तर - लाजवाब
सन्निकट - पासवाले, नज़दीकी
तरल कलोत्सव-धारा-(सुन्दर उत्सव की धारा) प्रसन्नता
विमन - अन्यमनस्क
विह्वल - घबराया हुआ, व्याकुल
खर - तेज़

तन्मय - लीन, डूबा हुआ
सांध्य समीरण - सांझ की हवा
चारु - सुन्दर
चपलतर - अति चंचल
लहरावलियां - तरंगमालाएँ
थिरकना - नाचना
असम ताल - जिसका ताल ठीक न हो
पैठे - डूबे हुए
गँवार - देहाती मूर्ख
आगन्तुक - आनेवाला
तृष्णा - प्यास
अंजली - दोनों हाथ कटोरे के समान मिलाना
दृग गोचर - दिखाई पड़ना

अलक - बाल

सिवार - पानी के अन्दर की घास

हिचक - संकोच

अन्तरतम - अंदर (आत्मा) से

निस्पंद - गतिहीन

स्पन्दन - हिलना-डुलना

दाँव - बाजी

ओट - आड़

तम - अंधकार

तिमिर - अन्धकार

कक्ष - कमरा

क्रंदन - रोना, विलाप

विक्षिप्त - पागल

शव - लाश

रव - आवाज़

झाँसी रानी की समाधि पर

इस समाधि में छिपी हुई है एक राख की ढेरी।
जलकर जिसने स्वतंत्रता की दिव्य आरती फेरी॥
यह समाधि, यह लघु समाधि, है झाँसी की रानी की;
अंतिम लीलास्थली यही है लक्ष्मी मरदानी की।
यहीं कहीं पर बिखर गयी वह भग्न हृदय-माला-सी,
उसके फूल यहाँ संचित हैं, है यह स्मृतिशाला-सी;
सहे वार पर वार अंत तक लड़ी वीर बाला-सी;
आहुति-सी गिर, चढ़ी चिता पर चमक उठी ज्वाला सी॥

बढ़ जाता है मान, वीर का रण में बलि होने से,
मूल्यवती होती सोने की भस्म यथा सोने से ॥
रानी से भी अधिक हमें अब यह समाधि है प्यारी,
यहाँ निहित है स्वतंत्रता की, आशा की चिनगारी ॥
इससे भी सुंदर समाधियाँ, हम जग में हैं पाते,
उनकी गाथा पर निशीथ में क्षुद्र जंतु ही गाते ।
पर कवियों की अमर गिरा में इसकी अमिट कहानी,
स्नेह और श्रद्धा से गाती है वीरों की बानी ॥
यह समाधि, यह चिर समाधि है झाँसी की रानी की ।
अंतिम लीला-स्थली यही है लक्ष्मी मरदानी की ।

समाधि - मक़बरा, रौज़ा

आहुति - हवन की वह मात्रा जो एक बार यज्ञ-कुंड में डाली जाय।

निहित - रखा हुआ, स्थापित

निशीथ - रात्रि

गिरा - वाणी
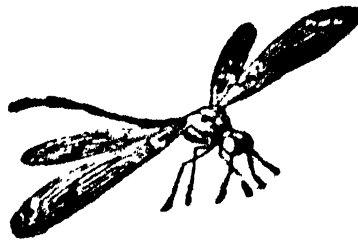
शिशु की दुनियाँ

(१)

माना सदा जाता रजनीश है खिलौना वहाँ,
बनता तमाशा वहाँ नित्य अंशुमाली है।
डाले हुए पैर का अंगूठा मुख में मनोज्ञ,
आता वह याद शिशु रूपी वनमाली है।
लाली अनुराग की सदैव रहती है वहाँ,
रखती उजाला वहाँ चंद्रमुख-वाली है।
बनते मनुज भी हैं हाथी और घोड़ा वहाँ,
शिशु! सचमुच तेरी दुनियाँ निराली है॥

(२)

छायी रहती हैं सदा सुख की घटायें वहाँ ;
होती कभी चित्त से न दूर हरियाली है ।
चिंता, दुख-शोक वहाँ आने नहीं पाते कभी,
करती सदैव वहाँ माता रखवाली है ।

मोह, मद, मत्सर का होता न प्रवेश वहाँ,
रहता न कोई वहाँ कपट कुचाली है ।
राजा है न कोई वहाँ, रानी है न कोई वहाँ ;
शिशु ! सब भाँति तेरी दुनियाँ निराली है ॥

रजनीश - चंद्रमा
अंशुमाली - सूर्य
मनोज्ञ - सुन्दर
मत्सर - डाह
कुचाली - दुराचारी, दुष्ट
घटा - मेघ

श्री मैथिलीशरण गुप्त

राहुल की कल्पना

विहंग-समान यदि अम्ब, पंख पाता मैं,
एक ही उड़ान में तो ऊँचे चढ़ जाता मैं।
मंडल बनाकर मैं घूमता गगन में,
और देख लेता पिता बैठे किस बन में।
कहता मैं—"तात, घर चलो, अब तो;"
चौंक कर अम्ब, मुझे देखते वे तब तो।
कहते—"तू कौन है?" तो नाम बतलाता मैं;
और सीधा मार्ग दिखा शीघ्र उन्हें लाता मैं।

मेरी बात मानते हैं, मान्य पितामह भी,
मानते अवश्य उसे टालो न वह भी।
किंतु बिना पंखों के विचार सब रीते हैं;
हाय! पक्षियों से भी मनुष्य गये-बीते हैं!
हम थलगामी जल में तो तैर जाते हैं,
किंतु पक्षियों की भाँति उड़ नहीं पाते हैं।

(यशोधरा से)

विहंग - पक्षी, चिड़ियाँ
गगन - आकाश
मंडल - चक्कर
पितामह - दादा
गया बीता - नीच
थलवासी - भूमि पर रहने वाले

भूत का शिकार

ठाकुर साहब एक, चार-छै साथी लेकर ;
जाने को ससुराल, चले, चढ़ कर ऊँटों पर।
चलते चलते एक गांव में पहुँचे ज्यों ही,
"मार्ग बंद है इधर" कहा लोगों ने त्यों ही ॥
"तीन कोस का फेर आप को खाना होगा,
खेतासर को छोड़, घूम कर जाना होगा।"
फिर सत्ते का हाल उन्होंने सभी सुनाया,
ठाकुर को आश्चर्य हुआ, विश्वास न आया!

बोले वे कि—"अवश्य जायँगे हम खेतासर,
आज हेमला भूत वहाँ देखेंगे जाकर!"
नौकर-चाकर और डरे सब संगी उनके,
समझाने वे लगे जो थे संगी उनके—
"तीन कोस का फेर कहाता फेर नहीं है।
चढ़ने को हैं ऊँठ, देर भी हुई नहीं है!
खेतासर के नाम सभी नौकर डरते हैं,
वहाँ न चलिए आप, यही विनती करते हैं।।"

सौ सौ कही, न एक किंतु ठाकुर ने मानी,
जहाँ हेमला भूत वहाँ चलने की ठानी।
"आओ" कह, चल पड़े और पहुँचे खेतासर,
सूने घर थे भायँ भायँ कर रहे भयंकर।
ठाकुर बोले—"यहीं बितावेंगे दोपहरी,
जल का बड़ा सुपास, और है छाया गहरी!"
अनुनय-विनय अनेक बार कर कर सब हारे,
ठहरे डेरा डाल अंत में ताल-किनारे।
नौकर-चाकर सभी हेमला से डरते थे,
डेरे से दो पैंड़ का न साहस करते थे!
यही सोचते थे कि—'प्राण जानेवाला है
सच्चा भूत सदेह अभी आनेवाला है।'

बस ठाकुर पर न था कि हृदय मसोस रहे थे।
"भूत बड़ा है विकट, जमाता है वह लातें;"
धीरे धीरे, इस प्रकार करते थे बातें ॥
कोई कोई काँप रहे थे भय के मारे,
पत्ता खड़का जहाँ, चौंक पड़ते थे सारे !
बैठे वे सब लोग परस्पर सटे हुए थे,
ठाकुर निर्भय, अलग दरी पर डटे हुए थे ॥
"डरना मत तुम लोग" उन्हें यों समझाते थे,
था हुक्का तैयार, उसे पीते जाते थे।
रक्खी थी बंदूक बगल में वह अनमोली,—
पूरे पैंड़ हज़ार मारा करती थी गोली ॥

गटरगश्त से लौट हेमला आया ज्यों ही।
'बल बल' कर के एक ऊँट बल्लाया त्यों ही।
इतने ही में मनुज-कंठ भी दिया सुनायी,
झट मरघट से निकल सवारी बाहर आयी !
बड़ा अचंभा हुआ, अनोखा दृश्य देखकर
देखा उसने, ठहर रहे हैं लोग ताल पर !
"अरे, कौन ये मूढ़ आज मरने आये हैं ?
डेरा मेरे ताल-तीर करने आये हैं !"
यही सोचता था कि एक जन यों चिल्लाया—

"ठाकुर साहब, हाय! हेमला सत्ता आया!"
ठाकुर बोले—"कहाँ? अरे, किस ओर? किधर है?"
"उधर देखिये, उधर, यही, यह, इधर, इधर है!"
देखा ठाकुर ने कि वेष विकराल बड़ा है,
मरघट में से निकल सामने 'भूत' खड़ा है!
दुर्बल, दीर्घ शरीर, भील-सा काला काला;
सिर पर रूखे बाल, धँसी-सी आँखों वाला—
मुँह पर दाढ़ी-मूँछ बड़ी बेडौल बढ़ी है,
नंगे तन पर बिना चढ़ाई भस्म चढ़ी है!
दृष्टि रोप कर लगे देखने वे जैसे ही,
"दुड़ू दुड़ू" कह, कूद चला सम्मुख वैसे ही,
चिल्लाये सब लोग—"अरे, आया, वह आया;
हाय! करें क्या? मरे, आज सत्ता ने खाया!"

ठाकुर ने ललकार उन्हें तब डाँट बतायी,
भरी धरी थी, निकट, विकट बंदूक उठाई॥
सीधी कर दी काल रूप, भयहरण भवानी;
जिसे देख मर गयी आज सत्ता की नानी!
"दुड़ू दुड़ू" को भूल, भागना चाहा जैसे;—
तभी देख बंदूक डरा,—"भागूँगा कैसे?
मर जाऊँगा, नहीं बचूँगा किसी तरह से;"

गरजा ठाकुर—"अरे, चला आ इसी तरह से ।
खबरदार, जो इधर-उधर को कहीं हिला है" ;
देखा सत्ता ने कि—आज यह गुरू, मिला है!
"हिला जहाँ बस, देह फोड़ दूँगा मैं तेरी ;
देख, खोपड़ी अभी तोड़ दूँगा मैं तेरी।"
कहा हेमला ने कि—"आदमी हूँ, मत मारो ;
महाराज, मैं भूत नहीं हूँ, दया विचारो!"
"बस, सीधा, चुपचाप चला आ यहाँ अभी तू,
भगने का उद्योग न करना भूल कभी तू ।
जहाँ धड़ाका हुआ, फड़ाका होगा तेरा ;
बचना है तो हुक्म मानना होगा मेरा ।
अपना सच्चा हाल सुना दे मुझे सभी तू,
पा सकता है प्राण दान शैतान, तभी तू ॥"

कालमुखी को देख हेमला दीन हुआ था,
सुन ठाकुर के वचन और बलहीन हुआ था ।
सोचा—'जो यह कहे उसे करना ही होगा,
नहीं, अभी बेमौत मुझे मरना ही होगा ।'
कहा—"दुहाई, मुझे मार मत देना गोली ।
अब न बनूँगा भूत, इधर हो ली सो हो ली ।
हुक्म आप का मान अभी हाज़िर होता हूँ ;

चरणों पर रख शीश, सभी दुखड़ा रोता हूँ ॥
पर नंगा हूँ, इसलिए कुछ शरमाता हूँ,
मारो मत, मैं हाथ जोड़ हा हा खाता हूँ।"

तब ठाकुर ने एक दुपट्टा फेंक उधर को,
कहा—"इसी को पहन, चला आ शीघ्र इधर को ॥"
उसे पहन कर, पास हेमला उनके आया;
कर प्रणाम, कुछ दूर बैठ, सब हाल सुनाया।
बोले ठाकुर—"अरे, दुष्ट, पापी, हत्यारे,
डरा डरा कर मनुज, बता क्यों इतने मारे?"
कहा हेमला ने कि 'कहाँ मैंने मारे हैं?
वे तो अपने आप मरे डर कर मारे हैं!'
"अच्छा, तो फिर 'दुडू-दुडू' की वह बदमाशी—
करता था किसलिए, बता, ओ सत्यनाशी?"
"जो डरते थे, उन्हें और डरवा देता था,"
"अरे, तभी तो मूर्ख, प्राण उनके लेता था।"
हाथ जोड़, कर विनय, हेमला उनसे बोला—
"अब सब कीजे माफ़, बदलवा दीजे चोला!"

कृपा दृष्टि से देख, कहा ठाकुर ने सब से—
"सुनो, भूल कर भी न भूत से डरना अब से।

भय में ही है भूत-भाव की सत्ता, देखो,
उदाहरण प्रत्यक्ष—हेमला-सत्ता देखो!"

(हेमला सत्ता से)

नोट :—इस कहानी के पहली की कहानी यों है। खेतासर गाँव में हेमला नामक आदमी रहता था। उसकी एक बीबी थी। उसे वह हद से ज़्यादा प्यार करता था। एक बार ज़ोरों की महामारी आयी और उसमें उसकी बीबी मर गयी। हेमला बहुत दुखी हुआ। दुख के जोश में उसने लोगों से कह दिया कि वह भी बीबी के साथ चिता पर चढ़ जल जायगा। स्त्रियाँ सती होती हैं, वह 'सत्ता' हो जायगा। मगर चिता की गर्मी जब बर्दाश्त न हुई तो वह उसमें से कूदकर बाहर निकल आया। शाम के वक्त जब वह नंगा-धडंगा गाँव को लौटा तो लोगों ने 'भूत! भूत!' का हल्ला मचाया और भागे। क्योंकि वे तो हेमला को चिता पर बैठा देख आये थे और मान लिया था कि वह जलकर सत्ता हो गया। जब गाँव के लोग डरने और भागने लगे तो हेमला को भी उस में मज़ा आने लगा और दर-असल भूत बनकर स्मशान में रहने लगा। उसके डर से वह गाँव का गाँव ख़ाली हो गया। लोगों ने वह रास्ता भी छोड़ दिया। बाद क्या हुआ सो तो इस पद्य में आपने पढ़ ही लिया है।

छै - छः
फेर - चक्कर
खेतासर - एक स्थान का नाम
हेमला सत्ता - भूत का नाम
बिनती - विनय, प्रार्थना
ठानना - निश्चय करना
सुपास - सुभीता, आराम
अनुनय-विनय - प्रार्थना
ताल - तालाब
पैंड़ - क़दम

सदेह - देह सहित
मसोस - दुखित
विकट - भयंकर
लात जमाना - ठुकराना, मारना
खड़का - खड़खड़ शब्द हुआ
सटे - चिपके, एक दूसरे से लगे
अनमोल - अमूल्य, बेशकीमत
बल्लाना - चिल्लाना
मरघट - श्मशान
बिकराल - भयंकर
भील - एक जंगली जाति
धँसी - गड़ी
बेडौल - कुरूप
रोपना - जमाना, स्थापित करना
सम्मुख - सामने
डांट बताना - फटकारना
तनना - खिंचा रहना
खोपड़ी - सिर, कपाल
धड़ाका - बंदूक की आवाज़
फड़ाका होगा - तेरी मौत होगी
उद्योग - प्रयत्न
कालमुखी - बंदूक
बेमौत - अकाल ही, बिना मौत के आये ही
दुखड़ा - दुख की कथा, विपत्ति
चोला - देह, शरीर

श्री राधेश्याम 'कथावाचक'

राम की वन-यात्रा

और दूसरे ग्राम ढिग, पहुँचे जब श्रीराम।
लगीं पूछने नारियाँ, सीता से अविराम॥

"क्यों जी, तुम कहाँ से आती हो? किस गाँव की रहनेवाली हो?
लक्ष्मी हो तुम किसके गृह की? किस आँगन की उजियाली हो?
साँवरे और गोरे जो हैं; सो कौन तुम्हारे हैं दोनों?
किस कुल के दीपक हैं दोनों? किस माँ के प्यारे हैं दोनों?"

यह सुनते ही सिया ने, की कुछ धीमी चाल।
बता दिया संक्षेप में, अपना थोड़ा हाल॥

"यह गोरे-से जो पीछे हैं, सो देवर हैं मेरे सजनी।
है लखनलालजी नाम इनका, अवधेश कुँवर हैं, हे सजनी!"
प्रभु को फिर, पट घूँघट ही में बतला कर तिरछे नयनों से।
"यह मुझ दासी के स्वामी हैं" कह दिया सिया ने सयनों से।

जान गयीं सब नारियाँ, हैं वे सीतानाथ।
फिर भी कुछ तरुणियों ने कहा हँसी के साथ॥

"जी एक बात तो रही गयी, उसका कुछ काम नहीं है क्या?
इनका तो नाम लखनजी हैं, पर उनका नाम नहीं है क्या?"
सुन कर यह बात सजनियों की, रह गयीं जानकी सकुचाकर।
मुँह खोल के अपना, बंद किया, फिर चल दीं आगे मुसकाकर॥

ढिग - पास
अविराम - लगातार
साँवरा - श्याम रंगवाला
धीमी चाल - मंद गति
पट - दरवाज़ा, परदा
तिरछा - टेढ़ा
सयन - इशारा
तरुणी - युवती
सकुचाना - लजाना

मेवाड़ सिंहासन

यह एक लिंग का आसन है,
इसपर न किसी का शासन है।
नित सिहक रहा कमलासन है,
यह सिंहासन सिंहासन है॥

यह सम्मानित अधिराजों से,
अर्चित है राज-समाजों से।
इसके पद-रज पोंछे जाते,
भूपों के सिर के ताजों से॥

इसकी रक्षा के लिए हुई,
कुर्बानी पर कुर्बानी है।
राणा! तू रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है॥

क्रीड़ा होती हथियारों से,
होती थी केलि कटारों से।
असि धार देखने को उँगली,
कट जाती थी तलवारों से॥

हल्दी घाटी का भैरव-पथ,
रँग दिया गया था ख़ूनों से।
जननी-पद-अर्चन किया गया,
जीवन के विकच प्रसूनों से॥

अब तक उस भीषण घाटी के,
कण-कण की चढ़ी जवानी है।
राणा तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है॥

भीलों में रण-झंकार अभी,
लटकी कटि में तलवार अभी।
भोलेपन में ललकार अभी,
आँखों में हैं अंगार अभी॥

गिरिवर के उन्नत-शृंगों पर,
तरु के मेवे आहार बने।
इसकी रक्षा के लिए शिखर थे—
राणा के दरबार बने॥

जावरमाला के गह्वर में,
अब भी तो निर्मल पानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है।

(हल्दी घाटी से)

सिहक - फीका पड़ना ; सूखना
कमलासन - ब्रह्मा
सम्मानित - जिसका सम्मान हुआ हो, प्रतिष्ठित
अधिराज - सम्राट
पदरज - पैर की धूलि
भूप - राजा
ताज - मुकुट
कुर्बान - न्योछावर
अभिमानी - घमंडी

केलि - क्रीड़ा, खेल
असिधार - तलवार की धार
विकच प्रसून - खिला हुआ फूल
कटि - कमर
अंगार - आग
तरु - पेड़
जावरमाला - एक पर्वत श्रेणी का नाम
निर्मल - साफ़
गह्वर - गुफा

श्री मैथिलीशरण गुप्त
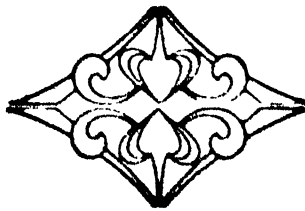
कीर

किधर उड़ गया बता दो वीर !
किसी ने देखा मेरा कीर ?

अभागा वह असहाय अनाथ,
पड़ा हो कहीं किसी के हाथ,
मुझे दे दो साहस के साथ

तोलकर ले लो हाटक-हीर ।
किसी ने देखा मेरा कीर ?

देह भी हरी भरी सुकुमार,
गले में एक अरुण गुण-हार,
चंचु-पुट पल्लव सहज सुढार,

गिरा पर गद्गद् थे सब धीर।
किसीने देखा मेरा कीर?

ग्राम वन छान चुकी हूँ हाय,
कहाँ जाऊँ अब मैं असहाय,
बता दो कोई मुझे उपाय,

करूँ मैं आज कौन तदबीर।
किसी ने देखा मेरा कीर?

दुख होता है दूना आज,
कहाँ वह एक नमूना आज,
पड़ा है पंजर सूना आज,

अछूती रक्खी है वह खीर।
किसीने देखा मेरा कीर?

रहा जो खा-खाकर भी खंख,
काल निज बजा रहा है शंख,
और दुर्बल हैं उसके पंख,

एक मुट्ठी भी नहीं शरीर।
किसीने देखा मेरा कीर?

शून्य में गयी जहाँ तक दृष्टि,
देख ली मैं ने नभ की सृष्टि,
वहाँ भी हुई निराशा-वृष्टि,

भरा आँखों में उलटा नीर।
किसीने देखा मेरा कीर?

अंधेरा कोटर-सा पाताल,
टटोला हाथ दूर तक डाल,
न पाया मैं अपना लाल.

रुका उलटा निःश्वास-समीर।
किसीने देखा मेरा कीर?

खोज डाला सब सागर तीर,
और आगे है केवल नीर,
अगम है वह अथाह गंभीर,

पार उड़ गया न हो बेपीर।
किसीने देखा मेरा कीर?

कहाँ खोजूँ उसको हे राम ?
तुम्हारा लेता था वह नाम,
दिखाओ मुझको अपना धाम,

झाड़ दो निज माया का चीर ।
किसीने देखा मेरा कीर ?

नोट:—यह कविता कवि की मनोव्यथा अच्छी तरह ज़ाहिर करती है। पुत्र-मरण का दर्द सहना आसान भी तो नहीं है। उसी शोक की हालत में अपने दिल का बोझ हल्का करने को कवि ने यह कविता लिखी है।

कीर - तोता
हाटक-हीर - सोना-हीरा
अरुण - लाल
चंचु - चोंच
पुट - दोना
पल्लव - नया पत्ता
सहज - सरल
सुढार - सुंदर, स्वाभाविक
छानना - खोज करना
तदबीर - उपाय, युक्ति
दूना - दुगुना

निज - अपना
खंख - खाली
नभ - आकाश
कोटर - पेड़ का खोखला जिसमें पक्षी रहते हैं।
समीर - हवा
अथाह - बहुत गहरा
बेपीर - निर्दय
धाम - स्थान, घर
चीर - वस्त्र